

देव-शास्त्र-गुरु पूजन

(बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल' कृत)

केवल-रवि-किरणों से जिसका, सम्पूर्ण प्रकाशित है अन्तर ।
उस श्री जिन-वाणी में होता, तत्त्वों का सुन्दरतम दर्शन ॥
सद्दर्शन-बोध-चरण पथ पर, अविरल जो बढ़ते हैं मुनिगण ।
उन देव परम-आगम गुरु को, शत-शत वन्दन, शत-शत वन्दन ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

इन्द्रिय के भोग मधुर विष-सम, लावण्यमयी कंचन काया ।
यह सब कुछ जड़ की क्रीडा है, मैं अबतक जान नहीं पाया ॥
मैं भूल स्वयं निज वैभव को, पर-ममता में अटकाया हूँ ।
अब निर्मल सम्यक्-नीर लिये, मिथ्यामल धोने आया हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जड़-चेतन की सब परिणति प्रभु! अपने-अपने में होती है ।
अनुकूल कहें प्रतिकूल कहें, यह झूठी मन की वृत्ति है ॥
प्रतिकूल संयोगों में क्रोधित, होकर संसार बढ़ाया है ।
सन्तप्त हृदय प्रभु! चन्दन सम, शीतलता पाने आया है ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

उज्ज्वल हूँ कुन्द-धवल हूँ प्रभु! पर से न लगा हूँ किञ्चित् भी ।
फिर भी अनुकूल लगें, उन पर, करता अभिमान निरन्तर ही ॥
जड़ पर झुक-झुक जाता चेतन, की मार्दव की खण्डित काया ।
निज शाश्वत अक्षत-निधि पाने, अब दास चरण-रज में आया ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन में माया कुछ शेष नहीं ।
निज अन्तर का प्रभु! भेद कहूँ, उसमें ऋजुता का लेश नहीं ॥
चिंतन कुछ फिर संभाषण कुछ, वृत्ति कुछ की कुछ होती है ।
स्थिरता निज में प्रभु पाऊँ जो, अन्तर-कालुष धोती है ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

अबतक अगणित जड़ द्रव्यों से, प्रभु! भूख न मेरी शान्त हुई।
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही॥
युग-युग से इच्छा सागर में, प्रभु! गोते खाता आया हूँ।
चरणों में व्यंजन अर्पित कर, अनुपम रस पीने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मेरे चैतन्य सदन में प्रभु! चिर व्याप्त भयंकर अँधियारा।
श्रुत-दीप बुझा हे करुणानिधि! बीती नहिं कष्टों की कारा॥*
अतएव प्रभो! यह ज्ञान-प्रतीक, समर्पित करने आया हूँ।
तेरी अन्तर लौ से निज अन्तर-दीप जलाने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ कर्म घुमाता है मुझको, यह मिथ्या भ्रान्ति रही मेरी।
मैं रागी-द्वेषी हो लेता, जब परिणति होती है जड़ की॥
यों भाव-कर्म या भाव-मरण, सदियों से करता आया हूँ।
निज अनुपम गंध-अनल से प्रभु, पर-गंध जलाने आया हूँ॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
जग में जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है।
मैं आकुल-व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है॥
मैं शान्त निराकुल चेतन हूँ, है मुक्ति-रमा सहचर मेरी।
यह मोह तड़क कर टूट पड़े, प्रभु! सार्थक फल पूजा तेरी॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षणभर निज-रस को पी चेतन, मिथ्या-मल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द-अमृत पीता है॥
अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल-रवि जगमग करता है।
दर्शन बल पूर्ण प्रकट होता, यह ही अरहन्त अवस्था है॥
यह अर्घ्य समर्पण करके प्रभु! निज गुण का अर्घ्य बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु! अरहन्त अवस्था पाऊँगा॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(तारक)

भववन में जीभर घूम चुका, कण-कण को जी भर-भर देखा ।
मृग-सम मृग-तृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा ॥

(बारह भावना)

झूठे जग के सपने सारे, झूठीं मन की सब आशायें ।
तन-जीवन-यौवन अस्थिर है, क्षण-भंगुर पल में मुझायें ॥
सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या ?
अशरण मृत-काया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या ?
संसार महादुखसागर के, प्रभु दुखमय सुख-आभासों में ।
मुझको न मिला सुख क्षणभर भी, कंचन-कामिनी प्रासादों में ॥
मैं एकाकी एकत्व लिये, एकत्व लिये सब ही आते ।
तन-धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते ॥
मेरे न हुए ये, मैं इनसे, अति भिन्न अखण्ड निराला हूँ ॥
निज में पर से अन्यत्व लिये, निज समरस पीनेवाला हूँ ।
जिसके शृंगारों में मेरा, यह महंगा जीवन घुल जाता ।
अत्यन्त अशुचि जड़-काया से, इस चेतन का कैसा नाता ॥
दिन-रात शुभाशुभ भावों से, मेरा व्यापार चला करता ।
मानस, वाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता ॥
शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल ।
शीतल समकित किरणें फूटें, संवर से जागे अन्तर्बल ॥
फिर तप की शोधक वह्नि जगे, कर्मों की कड़ियाँ टूट पड़ें ।
सर्वांग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पड़ें ॥
हम छोड़ चलें यह लोक तभी, लोकान्त विराजें क्षण में जा ।
निज लोक हमारा वासा हो, शोकांत बने फिर हमको क्या ॥
जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभो ! दुर्नय-तम सत्वर टल जाये ।
बस ज्ञाता-द्रष्टा रह जाऊँ, मद-मत्सर-मोह विनश जाये ॥
चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी ।
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी ॥

(देव-स्तवन)

चरणों में आया हूँ प्रभुवर! शीतलता मुझको मिल जाये।
मुरझाई ज्ञान-लता मेरी, निज अन्तर्बल से खिल जाये।
सोचा करता हूँ भोगों से, बुझ जायेगी इच्छा-ज्वाला।
परिणाम निकलता है लेकिन, मानो पावक में घी डाला॥
तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय सुख को ही अभिलाषा।
अबतक न समझ ही पाया प्रभु! सच्चे सुख की भी परिभाषा॥
तुम तो अविकारी हो प्रभुवर! जग में रहते जग से न्यारे।
अतएव झुके तव चरणों में, जग के माणिक-मोती सारे॥

(शास्त्र-स्तवन)

स्याद्वादमयी तेरी वाणी, शुभनय के झरने झरते हैं।
उस पावन नौका पर लाखों, प्राणी भव-वारिधि तिरते हैं॥

(गुरु-स्तवन)

हे गुरुवर! शाश्वत सुखदर्शक, यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्शन करनेवाला है॥
जब जग विषयों में रच-पच कर, गाफिल निद्रा में सोता हो।
अथवा वह शिव के निष्कण्टक, पथ में विषकण्टक बोता हो॥
हो अर्द्ध-निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों।
तब शान्त निराकुल मानस तुम, तत्त्वों का चिंतन करते हो॥
करते तप शैल नदी-तट पर, तरु-तल वर्षा की झड़ियों में।
समता-रसपान किया करते, सुख-दुःख दोनों की घड़ियों में॥
अन्तर्ज्वाला हरती वाणी, मानो झड़ती हों फुलझड़ियाँ।
भव-बन्धन तड़-तड़ टूट पड़ें, खिल जायें अन्तर की कलियाँ॥
तुम-सा दानी क्या कोई हो, जग को दे दीं जग की निधियाँ।
दिन-रात लुटाया करते हो, सम-शम की अविनश्वर मणियाँ॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
हे निर्मल देव! तुम्हें प्रमाण, हे ज्ञान-दीप आगम! प्रणाम।
हे शान्ति-त्याग के मूर्तिमान, शिव-पथ-पंथी गुरुवर! प्रणाम।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)